जाति उत्पत्ति का भ्रम-जाल

लेखक : राजीव पटेल
सहलेखक : संजय कुमार सिंह

सम्यक प्रकाशन

जाति उत्पत्ति
का
भ्रमजाल

लेखक

राजीव पटेल

सह-लेखक

संजय कुमार सिंह

जाति उत्पत्ति का भ्रम-जाल

भारत में "कुर्मी जाति" के नामकरण एवं अन्य जातियों के नामकरण से सम्बन्धित जितनी भी किताबें लिखी गई हैं, वे अज्ञात काल यानी वैदिक काल, जिसे "ब्राह्मणवादी काल्पनिक काल" भी कहते हैं क्योंकि यह पूर्णरूपेण श्रुति अर्थात सुनी सुनाई बातों का संग्रह है, जो आज से 150-200 वर्षों पूर्व पुस्तक के रूप में लिखा गया था जिससे जातिगत लेखक अपनी पुस्तक की शुरुआत करते हैं। जैसे सृष्टि निर्माण काल, रामायण काल, महाभारत काल से जाति की उत्पत्ति शुरू करते हुए सीधे मुगलकाल (मध्य काल) या अंग्रेजी काल (आधुनिक काल) में पहुंच जाते हैं और अपनी जाति का इतिहास लिखना शुरू कर देते हैं। लेखकगण बीच के प्राचीन ज्ञात काल को न जाने क्यों छोड़ देते हैं, जबकि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ज्ञात काल का समय ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारत के ज्ञात काल छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बाद के काल से ही भारत की सभ्यता और संस्कृति की प्रामाणिक और पुख्ता जानकारी मिलती है। उल्लेखनीय है कि ज्ञात काल के प्रामाणिक और पुख्ता अवशेष प्राप्त हुए हैं, जबकि अज्ञात काल (रामायण-महाभारत काल) के समय का किसी भी प्रकार का अवशेष या प्रमाण आज तक नहीं प्राप्त हुआ है और ना ही उसकी पुष्टि हुई है। यद्यपि कुछ लोग प्राचीनकाल के कुछ अवशेषों को जबरदस्ती रामायण-महाभारत काल से जोड़ते हैं, लेकिन ये उनका अन्धविश्वास और जिद्दीपना मात्र है।

आप स्वयं भी ज्ञात काल को देख और समझ सकते हैं। पुरातात्विक दृष्टिकोण से ज्ञात काल (ऐतिहासिक काल) को तीन भागों में बांटकर देखा जाता है—प्रथम ज्ञात काल का समय, पूर्व हड़प्पा काल (पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता-3500 ई.पू.) से लेकर ईसा पूर्व छठी शताब्दी का ज्ञात काल हैं। क्योंकि पुरातात्विक विभाग के पास इस काल के खुदाई में मिले काफी अवशेष मौजूद हैं, जिनसे मानव सभ्यता के विकसित होने का काफी पुख्ता सबूत मिलता है। परन्तु उस काल के लोग कौन सी जाति व्यवस्था को मानते थे या कौन सी धर्म-संस्कृति को मानते थे या कौन सी लिपि और भाषा को व्यावहारिक रूप से प्रयोग में लाते थे या वे देखने में कैसे थे आदि तथ्य आज तक किसी भी पुरातत्व विज्ञानी अथवा पुरातात्विक विशेषज्ञों को सही-सही पता नहीं चल पाए हैं। केवल अनुमान के आधार पर विभिन्न इतिहासकार अलग-अलग प्रकार से वर्णन करते हैं।

फिर जाति की उत्पत्ति का इतिहास लिखने वाले लेखकगण कैसे ज्ञात कर लिए कि उनकी जाति कि उत्पत्ति हजारों वर्ष पूर्व हुई थी?

दूसरी ज्ञात काल की सभ्यता ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ईस्वी-सन् (अर्थात 600 वर्षों का समय) तक है जिसे 'बौद्धिक' सभ्यता यानी बुद्धकाल की सभ्यता भी कहते हैं। इस काल में कौन से लोग थे या उनकी धर्म-संस्कृति क्या थी या उनकी लिपि और भाषा क्या थी या उनका नाम क्या था या उन सभी के साम्राज्यों का नाम क्या था अथवा उनके साम्राज्य में लोग कैसे रहते थे? आदि की समस्त जानकारी पुरातात्विक विशेषज्ञों और पुरातात्विक संग्रहालय को है। लेकिन इन सभी की जाति क्या थी? इसकी प्रामाणिक जानकारी या साक्ष्य बिल्कुल उपलब्ध नहीं है। इस काल के लगभग हर सम्राट का शिलापट्ट मौजूद है, जिस पर किसी भी प्रकार की जाति व्यवस्था की जानकारी नहीं मिलती है। इस काल के मुख्य सम्राटों के वंश और स्थापित करने वालों के नामों की संक्षिप्त में चर्चा कर रहा हूं—जैसे सबसे पहला ज्ञात सम्राट छठी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध का हर्यंक वंश का सम्राट बिम्बिसार है, उसके बाद क्रमशः शिशुनाग वंश के सम्राट शिशुनाग, नन्द वंश के महापद्मानन्द, मौर्य वंश के चन्द्रगुप्त मौर्य, शुंग वंश के पुष्यमित्र शुंग, कण्व वंश तथा उसके बाद क्रमशः हिन्द बैक्ट्रियाई शासक (यूनानी शासक जो भारत में बस गए

थे) मिनांडर, शक और कुशाण वंश के राजाओं का शासन रहा है।

इन सभी सम्राटों के समय "बुद्ध" की धर्म संस्कृति काफी उत्कर्ष पर थी और लिपि ब्राह्मी व भाषा प्राकृत/पालि थी। इन सभी का 'साक्ष्य व प्रमाण के रूप में शिलापट्ट हर ओर प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। लेकिन जाति-व्यवस्था या वर्ण-व्यवस्था की चर्चा का प्रमाण इन पुरातात्विक अवशेषों में कहीं भी नहीं मिलता है।

तीसरी ज्ञात सभ्यता का काल ईस्वी सन् से लेकर ईसा बाद 8वीं शताब्दी (प्रथम ईस्वी से 800 ईस्वी तक) तक था। इस सभ्यता को भारत का "स्वर्ण काल" भी बोला जाता है। इस सभ्यता के मुख्य सम्राटों में कुषाण वंश के कनिष्क, गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, वर्धन वंश के हर्षवर्धन और पाल वंश के प्रथम शासक गोपाल और धर्मपाल का नाम आता है। इनके काल में भी लिपि ब्राह्मी व भाषा प्राकृत/पालि की प्रामाणिकता प्राप्त होती है। साथ ही धर्म-संस्कृति में "बुद्ध" का अवशेष उपस्थित है। परन्तु इस काल में भी जाति और वर्ण की बनावट कहीं भी या कहें तो किसी भी सम्राट के समय देखने को नहीं मिलती है। इस काल खण्ड की सबसे बड़ी उपलब्धि नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना (415 ईस्वी से 450 ईस्वी के बीच) की थी, जिसमें देश-विदेश से शिक्षा ग्रहण करने लोग आते थे। उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण वर्णन नालंदा के अवशेषों में समाहित है, जिसमें कहीं भी वर्ण व्यवस्था या जाति-व्यवस्था की चर्चा नहीं मिलती है। 8वीं सदी उपरांत ही पाल वंश के शासक धर्मपाल (750 ईस्वी से 810 ईस्वी) के बाद से भारत में काफी बदलाव देखने को मिलता है। भारत की सभ्यता-संस्कृति, भाषा-लिपि, धर्म-उपासना और वर्ण-जाति में एक नयापन प्रमाण और अवशेष सहित मिलना शुरू हो गया है, जिसकी चर्चा आगे कर रहा हूं।

8वीं सदी के बाद से ही भारत की सभ्यता में वर्ण और जाति-व्यवस्था के क्षेत्र में पहला बदलाव प्रामाणिक तौर पर राजपूत राजाओं की उत्पत्ति के साथ ही मिलना शुरू हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू

व्यवस्था के तहत धार्मिक मंदिरों के निर्माण व स्थापना का समय भी शुरू हो जाता हैं। नौवीं और दसवीं शताब्दी के कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस समय राजस्थान में राज्य करने वाले कुछ राजपूत परिवारों का उद्भव सूर्यवंशी राम और चंद्रवंशी कृष्ण से हुआ था। कारण स्पष्ट है कि उस समय के सम्राटों के यहां रहने वाले ब्राह्मण (भाट) दरबारियों ने अपने लाभ और प्रभुसत्ता को बनाए रखने हेतु, अपने-अपने सम्राटों का बढ़ा-चढ़ाकर चरित्र-चित्रण किए। इन दरबारियों ने अपने ग्रन्थों में उन राजाओं की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है और राजाओं की वंशावली को काल्पनिक ग्रन्थों में वर्णित देवतानुमा पात्रों से जोड़कर दर्शाया है। जिसके कारण इसके पूर्व उपलब्ध किसी भी अभिलेख में राजपूतों की चर्चा नहीं मिलती है। लिपि व भाषा के तौर पर नागरी लिपि में संस्कृत भाषा की पाण्डुलिपि भी इसी समय से मिलना शुरू हो गई। प्रथम शंकराचार्य द्वारा मीमांशा पीठ के माध्यम से अर्थात भारत की चारों दिशाओं में अवस्थित पीठ के माध्यम से वर्ण आधारित मनु की सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का समय भी यही रहा था यानी इसी समय से ब्राह्मण और क्षत्रिय (राजपूत) का मिलना शुरू हो गया था या दूसरे शब्दों में कहें तो छोटे-छोटे सामन्ती राजाओं को राजपूत जाति में बदलने का ब्राह्मणी कुचक्र आरम्भ हो गया था।

8वीं सदी के बाद भारतीय परिवेश में वर्ण आधारित सामाजिक परिवर्तन जोर पकड़ने लगा था। ब्राह्मणी-व्यवस्था के तहत राजपूत राजाओं (क्षत्रिय) का छोटे-छोटे सामन्ती राज्यों में स्थापित होना शुरू हो गया था। या दूसरे शब्दों में कहें तो छोटे-छोटे सामन्ती राजाओं को राजपूत जाति में बदलने का ब्राह्मणी कुचक्र आरंभ हो गया था।

इसके परिणामस्वरूप भारत में शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता का अंत हो गया तथा देश कमजोर होने लगा और "तुर्क-मुस्लिम" आक्रमणकारी लुटेरों का आने का सिलसिला भी शुरू हो गया था। इसी समय से भारत की सभ्यता में जातियों एवं उप-जातियों का प्रादुर्भाव या

उत्पत्ति का प्रमाण मिलता है। यानि कुल मिलाकर देखा जाए तो 8वीं शताब्दी के बाद का काल ही भारत में संस्कृत भाषा व नागरी लिपि, ब्राह्मणी धर्म-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था और पूर्व की बौद्धिक व्यवस्था को कुचलने हेतु मीमांसा स्कूल और शंकराचार्य पीठ की स्थापना का काल रहा था।

11वीं और 12वीं शताब्दी आते-आते भारतीय ब्राह्मण काल और राजपूत शासकों के काल में वर्ण आधारित और जाति आधारित व्यवस्था के चरमोत्कर्ष के कारण भारतीय सामाजिकता चरमरा गई थी। यह बात उस समय के देशी-विदेशी सभी लेखकों की बातों में लम्बी दास्तान के रूप में मिलती है कि उस समय के सभी राजाओं की सैनिक छावनी में हर जाति के लिए खाने की व्यवस्था अलग-अलग होती थी। भारतीय राजपूत शासक एक-दूसरे राजाओं को नीचा दिखाने हेतु विदेशी तुर्क-मुस्लिम आक्रमणकारियों से मदद लेनी शुरू कर दी थी जिसके परिणाम स्वरूप 13वीं सदी के आरम्भ से ही तुर्क-मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत में अपने पैर जमा लिए और क्रमशः भारत में उनकी सत्ता का विस्तार होता चला गया। पुनः 15वीं शताब्दी में भारतीय राजपूतों की सत्ता व्यवस्था तुर्क-मुस्लिम शासकों के स्थान पर मुगलों (मध्य एशिया के मुस्लिमों की एक प्रजाति) के अधीन हो गई। 15वीं-16वीं सदी में भारतीय समाज ब्राह्मणी वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत जातियों के मकड़जाल में फंसकर पूरी तरह से बिखर गया था। सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ इसी समय बहुत सारे समाज सुधारक आगे आए, लेकिन ब्राह्मणों ने अपने रक्षक क्षत्रिय शासकों के साथ मिलकर कठोर दमनात्मक करवाई करते हुए कबीर आदि संतों के सामाजिक सुधार आंदोलन को दबाने का काम किया। फिर भी समाज सुधारक संतगण उस ब्राह्मणी वर्ण और जाति-व्यवस्था से इतना ज्यादा दुखी थे कि अपने समाज सुधार आंदोलन को उनके बलपूर्वक रोकने के बावजूद भी नहीं रुके और उस आंदोलन को आगे बढ़ाते गए। वर्ण-व्यवस्था के तहत निम्न जातियों के समाज सुधारकों द्वारा चलाए

जा रहे समाज सुधार आंदोलन की रही-सही कसर तब और पूरी कर दी, जब बहुजनों की अज्ञानता का लाभ उठाते हुए ब्राह्मणों ने इस बात का प्रचार-प्रसार करना शुरू कर दिया कि ये समाज सुधारक लोग "संत" हैं और ये ब्राह्मणी धर्मानुसार अपना मार्ग चुने हैं, इसलिए इनका समाज में मान-सम्मान बढ़ा है, आप लोग भी अगर सम्मान पाना चाहते हैं तो हिन्दू धर्मानुसार कार्य करें! अब उस बढ़ते हुए समाज सुधार आंदोलन को रोकने हेतु ब्राह्मणों ने उनके समाज सुधार कार्यक्रम को "धर्म से जोड़कर भक्ति आंदोलन या संत आंदोलन" का नाम दे दिया और लोगों के बीच में काफी प्रसारित भी किया ताकि बहुजन लोग अपनी-अपनी जातियों के अंदर ब्राह्मणों के विषमतामूलक धार्मिक व्यवस्था के उत्थान हेतु धार्मिक आंदोलन चलाते रहें। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य बहुजन समाज के लोग ब्राह्मणों के फैलाए गए अन्धविश्वास और असमान जाति बंधन में बंधते चले गए।

मुगलकालीन (1526 ईस्वी से 1764 ईस्वी के आस-पास का काल) भारतीय व्यवस्था में सारी जातियों के वर्ण आधारित विभाजन का इस प्रकार उल्लेख मिलता है :–

(जिसको मैं व्यक्तिगत तौर पर ब्राह्मणी बकवास मानता हूं)

ब्राह्मण–ब्राह्मण वर्ण

सम्राट/राजपूत–क्षत्रिय वर्ण

व्यापारी–वैश्य वर्ण

कृषक, पशुपालक, अन्य पेशागत समुदाय–सछूत शूद्र

मजदूर–अछूत शूद्र

मुस्लिम शासकों के काल (1206 ईस्वी के बाद से ही लागू) में जब भारतीय हिन्दू समाज पर जजिया टैक्स लगा तब ब्राह्मण वर्ण के लोग उस जजिया टैक्स के दायरे से बाहर हो लिए थे। दरअसल जजिया टैक्स का मूल उद्देश्य था कि जो कोई भी व्यक्ति इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करता है तो वह इस्लाम धर्म का दुश्मन समझा जाएगा

और इस कारण वह व्यक्ति मुस्लिम सम्राटों को टैक्स देगा।

मुगलों (मुस्लिम शासकों की एक प्रजाति) के इस प्रस्ताव पर ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के लोगों ने मुगलों से मिलकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति के खिलाफ षड्यंत्र तो किया, लेकिन इस्लाम धर्म स्वीकार किया या नहीं किया, इसका पुख्ता सबूत नहीं मिलता है। लेकिन वे मुगलों के बनाए जाल "जजिया टैक्स" से मुक्त जरूर हो गए थे।

दूसरा प्रमुख वर्ण "क्षत्रिय वर्ण" था, जिसमें उस समय के भारतीय सम्राट या राजपूत लोग आते थे।

कुछ सम्राट/राजपूत मुगलों की शर्तों को नहीं मानकर जंगलों में पलायन कर गए और आज की कुछ घुमन्तु जाति बन गए। कुछ राजपूत शासक मुगलों से युद्ध करते हुए मारे गए, जबकि बहुत सारे राजपूत शासक मुगलों की शर्तों को मानते हुए इस्लाम स्वीकार कर लिया।

"अकबरनामा" के अनुसार ब्राह्मण वर्ण और क्षत्रिय वर्ण के लोग मुगलों से छुपे तौर पर पारिवारिक सम्बन्ध भी बनाने लगे थे। इसका स्पष्टीकरण आज के ब्राह्मणी समाज के विद्वानों को देना चाहिए!

इस विषय पर आज के "क्षत्रिय" कहलाने वाले लोगों या "क्षत्रिय" वर्ण धारण करने की रेस में दौड़ लगाने वाले विद्वान लोगों को भी इसका जवाब देना चाहिए! आखिर ऐसा क्यों हुआ?

तीसरे और अंतिम सछूत और अछूत शूद्र लोग उस जजिया टैक्स के भुक्तभोगी थे और अंत तक भुक्तभोगी ही रहे। लेकिन अपने स्वाभिमान को बचाते हुए उस झूठी ब्राह्मणी सभ्यता और संस्कृति को बचाए रखा। यानी कि इन सछूत और अछूत के खून में गुलामी करने की गहरी प्रवृति ब्राह्मणों ने 800 ईस्वी से 1500 ईस्वी तक के काल में जबरदस्ती बैठा दी थी।

भारतीय शासन व्यवस्था में मुगलों की सत्ता कमजोर हो जाने के बाद (1764 ईस्वी के बाद) अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया और ब्राह्मण वर्ग ने मुगलों का साथ छोड़कर अंग्रेजों के साथ हो लिया। साथ

ही पुनः ब्राह्मण वर्ग इन सछूतों और अछूतों पर अपना आधिपत्य जमाना शुरू कर दिया। 1872 ईस्वी में ब्राह्मणों की कुटिल चाल का पहला परिणाम यह दिखाई देता है कि भारत में अंग्रेजी सरकार से मिलकर अपनी उस काल्पनिक वर्ण-व्यवस्था को सत्यापित और स्थापित करवाने के लिए "वर्ण आधारित" भारत की जनगणना करवाता है, जिसमें ब्राह्मण जाति को–

- "ब्राह्मण वर्ण" (सर्वोच्च वर्ग)
- रियासतदार/जमींदार को–"क्षत्रिय वर्ण" (सर्वोच्च वर्ग से नीचे)
- व्यापारी वर्ग को–"वैश्य वर्ण"
- कृषक मजदूर कर्मी/पशु पालक/सेवक कर्मकार को–"सछूत शूद्र वर्ण" और
- परित्यक्त मजदूर/सफाई कर्मकार को–"अछूत शूद्र वर्ण" में गिनती करवाकर पुरानी काल्पनिक व्यवस्था को सत्यापित और स्थापित करा दिया।

पुनः ब्राह्मणी व्यवस्था का परचम लहराते हुए ब्राह्मणों ने अंग्रेजों से मिलकर 1931 ईस्वी की जनगणना में प्रत्येक प्रदशों में भाषा और क्षेत्र के आधार पर भारत के बहुजन समाज को लगभग 6500 जातियों में विभक्त करते हुए इन लोगों को एक नई खंडित जाति का प्रमाणपत्र दे दिया।

भारतीय समाज में 1900 ईस्वी के बाद कुछ ऐसे विद्वान लेखक भी हुए, जिन्होंने अपनी विद्वता और परिकल्पना का इस्तेमाल करते हुए अपनी-अपनी जाति की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक किताबें लिखीं। इसमें "कुर्मी जाति" की ही नहीं अपितु अन्य जातियों की भी किताबें मिलेंगी। अब आपको ध्यान देना है कि लेखकगण अपनी पुस्तकों में उस काल्पनिक युग को वैदिक युग, राम युग, महाभारत युग, कौरव युग, पांडव युग, कर्ण युग, रावण युग, इंद्र युग, परशुराम युग, बलराम युग, कश्यप युग, वशिष्ठ युग, विश्वामित्र युग, अश्वस्थामा युग या अन्य कई प्रकार के नामों से सुशोभित युगों की चर्चा करते हैं। इन सब

युगों का समय, भाषा, लिपि, धर्म का ज्ञान कहां और कब था, ये सब बातें बताने का कष्ट ब्राह्मण वर्ग करेगा क्या?

इसके अतिरिक्त इन सब के बाद और हड़प्पा-मोहनजोदड़ो सभ्यता तक के बीच के समय में कौन सी सभ्यता-संस्कृति व लोग और जातियां थीं? यह भी बताने का कष्ट करेंगे क्या?

अगर इतनी जानकारी आपके पास है या थी, तो हड़प्पा-मोहनजोदड़ो के समय में कौन सी भाषा, लिपि, सभ्यता, संस्कृति, धर्म और जातियां थीं, ये भी बताने का कष्ट करें?

हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की व्यवस्था के बाद के ज्ञात काल यानी छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर ईस्वी-सन् के आरम्भ तक किस प्रकार के वर्ण या जाति-व्यवस्था का प्रमाण (शिलापट्ट अवशेष) मिलता है? ये भी बताने का कष्ट करें?

उल्लेखनीय है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व और ईस्वी सन् के बीच का समय यानी 600 वर्षों के ज्ञात काल का समय "बुद्ध" का समय रहा है जिसमें भाषा के प्रमाण के रूप में प्राप्त/पालि भाषा का शिलापट्ट हमारे सामने मौजूद है। इसमें बुद्ध के अनुयायी के रूप में सम्राट बिम्बिसार और सम्राट अशोक काफी लोकप्रिय हुए हैं। ऐसे इस ज्ञात काल के सभी सम्राटों की भाषा और लिपि, धर्म-संस्कृति का स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है, जिसमें कहीं भी ब्राह्मण वर्ण और जाति की चर्चा नहीं है, आखिर क्यों?

फिर जातियों की उत्पत्ति की बातें पूर्व काल में मिले अस्पष्ट सामानांतर शब्दों के आधार पर वर्तमान परिवेश में हमारे विद्वान लेखकों ने कैसे अपनी किताब में लिख दिए हैं? अगर लिख भी दिए हैं, तो फिर उन नामों और शब्दों की चर्चा आगे के काल में क्यों नहीं मिलती है? इसकी भी जानकारी उन्हें देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त लेखकगण इन काल्पनिक युगों (रामायण-महाभारत काल) के नामों की चर्चा के बाद ज्ञात काल को छोड़ते हुए सीधे 800 ईस्वी के बाद या 1600 ईस्वी के बाद के काल में पहुंचकर किसी जगह उपयुक्त शब्दों से तारतम्य मिलाते

हुए जातियों का निर्माण कर देते हैं। पाठकगण, आखिर क्या जातियों का निर्माण महज कुछ शब्दों और वाक्यों को जोड़-तोड़ कर लिख देने से होता है या पीढ़ी दर पीढ़ी होती है? जितने भी हमारे बीच विद्वान लेखक महोदय हुए हैं, उन्होंने जिस किसी भी जाति की किताबों का लेखन या रचना की हैं, उनमें वे लोग सामान्य तौर पर सर्वप्रथम हड़प्पा-मोहनजोदड़ो काल (आज से चार हजार वर्ष पूर्व) से भी पूर्व काल यानी वैदिक काल (अज्ञात काल) की चर्चा करते हुए सीधे मुगल काल (1526 ईस्वी के बाद) पर आ जाते हैं या अज्ञात काल की चर्चा करते हुए मौर्य काल (320 ईस्वी पूर्व) और अंग्रेजी (1764 ईस्वी के बाद) काल पर आ जाते हैं लेकिन बीच के समस्त प्रामाणिक समय अर्थात दो हजार ईस्वी पूर्व से लेकर 1700 ईस्वी के बीच के अर्थात 3700 वर्षों के काल को भूल जाते हैं या अंतर्ध्यान होकर मौन साध जाते हैं क्यों?

वस्तुतः भारत में जातियों की उपस्थिति का प्रामाणिक अभिलेख 8वीं शताब्दी के उत्तरार्ध यानी पाल वंश के बाद के समय से मिलना शुरू हो जाता है, जो आगे पीढ़ी दर पीढ़ी मिलते आया है। इसमें प्रभावशाली, संपन्न और बुद्धिजीवी जातियों का प्रमाण मिलता है। इस काल (800 से 1200 ईस्वी तक) को राजपूत और ब्राह्मण काल भी कहते हैं। लेकिन जो जातियां मेहनतकश, निरीह, निरक्षर और निःशक्त हुआ करती थीं, उनका प्रमाण और प्रसार अंधेर कूपों में दब जाया करता था। इस कारण गरीब जातियों की उत्पत्ति की अवधारणाएं दब गई थीं, लेकिन इन जातियों के अंदर जब कुछ लोग साधन सम्पन्न बन गए, तब प्रतिष्ठा पाने के लिए अपनी उत्पत्ति को काल्पनिक काल से जोड़ कर देखना शुरू कर दिया, जिसका आधार बिल्कुल भ्रामक और तथ्यहीन है।

(जाति उत्पत्ति की विस्तारपूर्वक और प्रमाण के साथ चर्चा आगामी पुस्तक में कर रहा हूं।)

मध्यकाल (1200 ईस्वी से लेकर 1700 ईस्वी के बीच) में बहुत से विदेशी यात्री भारत की यात्रा पर आए और अपनी यात्रा के दौरान यहां

की सभ्यता और संस्कृति को नजदीक से देखा और उन्हें लिपिबद्ध करने का काम किया है। मैंने कुछ ऐसे यात्रा वृतांतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया और पाया कि उनके यात्रा-वृतांत में ज्यादातर भारत की मुख्य जातियों राजपूत (सम्राट), ब्राह्मण (दरबारी), वैश्य (व्यापारी) की चर्चा ही मिलती है, जबकि दूसरी जातियों की चर्चा बहुत ही कम मिलती है। लेकिन एक फ्रांसिसी यात्री जिसने सत्रहवीं सदी में भारत की यात्रा की थी और अपना यात्रा वृतांत लिखा है—"वर्नियर की भारत यात्रा" में उसने पेज नं. 143 पर "कृषक जाति" और "खेतिहर" नाम से सम्बोधित करते हुए इनकी थोड़ी सी चर्चा की है कि "भारत में कृषि कार्य हेतु एक समाज होता था", जिसको आज शायद हम लोग "कुर्मी-कोयरी-पाटीदार-लोध-धानुक-सैंथवार-महतो-कुनबी-कुटुम्बी-कम्मा-कापू-रेड्डी" या अन्य के नाम से सम्बोधित करते हैं।

इस समाज के बारे में "वर्नियर" लिखते हैं कि भारत में खेतिहर समाज काफी गरीब हुआ करता था, जिसका मुख्य कारण यह था कि यह समाज मुगल सम्राट से ज्यादा उसके दरबारी, रियासतदार और जमींदार से ही परेशान और त्रस्त रहता था। राजधानी से ज्यादा दूर होने की वजह से उनके भू-क्षेत्र पर दरबारी, रियासतदार, जमींदार और तहसीलदारों का प्रभाव ज्यादा रहता था और ये लोग किसानों से लगान के अलावा सामन्तवादी प्रवृति का उपयोग करते हुए कृषक के घरों से या खेतों में पड़ी फसल को भी लूट लेते थे और उन्हें मानसिक- शारीरिक रूप से काफी प्रताड़ना भी देते थे, जिसकी वजह से कृषक परिवार मानसिक रूप से विक्षिप्त रहा करता था। इस कारण किसानों की गृहस्थ जिंदगी काफी दयनीय रहती थी। इनकी गृहस्थ जिंदगी में प्रथमतः तो इसके परिणामस्वरूप वंश वृद्धि भी सही रूप से नहीं हो पाती थी और अगर वंश वृद्धि होती भी थी तो इनके बच्चे कुपोषण और भुखमरी का शिकार होकर काल के गाल में समा जाते थे। ये लोग रियासतदार और जमींदारों के शोषण से ऊब कर अक्सर एक सीमा से दूसरी सीमा में पलायन करते रहते थे, इस कारण इनके घर भी स्थायी और पक्के ईंटों

के नहीं होते थे। इनके घर मिट्टी और घास-फूस के बने होते थे। अधिकतर खेतिहर परिवारों के दिलोदिमाग में यह बात बैठ गई थी कि मेहनत और मजदूरी हम लोग करते हैं और ये रियासतदार और जमींदार आता है और सब कुछ लूट के ले जाता है, जिसकी वजह से बहुत सारे खेतिहर परिवार जमींदारों के आतंक से जंगलों में पलायन कर गए और बाद में जंगलों के अंदर ही जीवकोपार्जन का साधन खोज लिया और वहीं जीवन बिताने लगे। पश्चिमी भारत के कुछ खेतिहर परिवार के लोग जमीनदारों और रियासतदारों के आतंक से बचने के लिए उनके सिपाहियों के यहां घोड़ों की देखभाल या घरेलु कार्य या कृषिकार्य (बागवानी) करने की नौकरी का काम भी करने लगे थे, जो बाद में जोधपुर गजट की संख्या 2240 से सैनिक खेतिहर या "सैनी" के नामों से प्रसिद्ध हुए। इस आदेश की गजट की प्रति नीचे दे रहा हूंः—

Adoption of new identity in 1930 & 1940 CE

The Rajput Mali community adopted the surname Saini in the 1930 & 1940 decade during the colonial rule—

ORDER

Jodhpur, the 6th February, 1937.
No. 2240

Subject- Recording of Malis as "Sainik Kshatriyas" in Pattas and Development Department records.

Reference- P.W.D. Minister's No. 431 Dated 22nd October, 1936

His Highness has stated his personal view that he has no objection to Malis being recorded as "Sainik Kshatriyas" in the pattas of the Development records.

Mehakmas D.M. Field LT. Col. CIE. Jodhpur.
Chief Minister.
January 23, 1937.
Government of Jodhpur.

The euact order issued my government is given below: -

1937 Jodhpur State Order in respect of renaming of Mali caste to 'Saini' or 'Sainik Kshatriya'—Source: Jodhpur State Archives—

देश में अंग्रेजी सरकार के आने के बाद से कृषक परिवारों की जिंदगी में कुछ परिवर्तन का दौर शुरू हुआ था, लेकिन यहां भी पूर्व के सभी दरबारी और रियासतदार बाधक बनकर खड़े हो गए, क्योंकि अब पूर्व के सभी दरवारी, जमींदार और रियासतदार लोग मुगलों को छोड़ कर अंग्रेजी सरकार की चमचागिरी में आ गए थे। दूसरी तरफ अंग्रेजों को भी किसानों से लगान वसूल करने हेतु एक माध्यम चाहिए था, अतः मुगलों के अधीन कार्यरत पुराने सभी जमींदारों और रियासतदारों को पुनः अपने अधीन नियुक्त कर लिया।

लेकिन अंग्रेज मुगलों से ज्यादा समझदार और व्यवस्थित रूप से शासन चलाने वाले लोग थे। इसलिए पहले के मुगल शासन में लगान वसूल करने की प्रक्रिया में परिवर्तन करते हुए नई व्यवस्था बनाई, जिसके अंतर्गत निचले स्तर का तहसीलदार या जमींदार यदि अपने कार्यो के प्रति ईमानदार नहीं होता था या उनकी लापरवाही दिखती या किसी भी प्रकार की लगान वसूली प्रक्रिया में कमी दिखती तो उनकी जमींदारी को बेचा या नीलाम किया जा सकता था और उस नीलामी प्रक्रिया में उस इलाके का कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता था। इसी वजह से बाद के समय में कुछ खेतिहर कृषक परिवार भी इस नई जमींदारी प्रक्रिया में भाग लेकर उस जमींदारी हिस्सा का कुछ भाग खरीद कर जमींदार बन जाता था।

दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार के ऊपर विश्वव्यापी संगठन होने के नाते अन्य देशों का भी दबाव हमेशा बना रहता था कि भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक कुरीतिओं को कम से कम किया जाए।

इन दो वजहों से अंग्रेजी शासनकाल में भारत में कुछ आमूलचूल परिवर्तन की शुरुआत देखने को मिलती है।

प्रथम तथ्य–कुछ किसान परिवार के लोग 1800 ईस्वी से 1900 ईस्वी के बीच में मेहनत और बचत करते हुए अंग्रेजी सरकार के अंदर एक आना से लेकर सोलह आना (उस जमाने की एक प्रकार की हिस्सेदारी मापने का तरीका) तक की जमींदारी खरीदी। इसके प्रमाण के रूप में देश के कुछ भागों में पुराने प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों को देख सकते हैं।

द्वितीय तथ्य–अंग्रेजी सरकार को समाचारपत्र के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के दबाव में आकर नहीं चाहते हुए भी अपने अधीनस्थ दरबारी और रियासतदारों के ऊपर कुछ बंदिशों को लगाना पड़ा था, जिसकी वजह से इन दरबारी और रियासतदारों ने अपने स्वामी अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज भी उठाई थी।

इन सब तथ्यों की चर्चा करना मैंने इसलिए आवश्यक समझा क्योंकि मुगल काल के पूर्व समय तक कृषि कर्मी के अंदर आज के जैसा सामाजिक विभाजन मौजूद नहीं था। परन्तु मुगल काल और उसके बाद में कृषक समाज पर सामंतवादी जमींदार और रियासतदारों के घोर अत्याचार की वजह से कृषकों को एक जगह से दूसरी जगह पर पलायन करना पड़ा, जिसका असर हर कृषक समूह पर पड़ा और अब कृषक जातीय समूह को नए जगहों पर उसके पुराने जगह में प्रचलित शब्दों से और जातिसूचक नामों के द्वारा सम्बोधित होना पड़ा और पीछे छोड़े हुए पुराने जातीय समूहों से कटते जाना इनकी नियति बन गई थी। जिसके परिणामस्वरूप कृषक समाज प्रत्येक नए जगह पर नए-नए नामों से सम्बोधित होता रहा और एक समय ऐसा भी आया जब इस कृषक समाज की गिनती सैकड़ों उपजातियों के रूप में होने लगी।

दूसरी ओर अंग्रेजी काल में सामाजिक संगठनों का समाज सुधार आंदोलन बढ़ता जा रहा था। इस वजह से अब कुछ कृषक समूह थोड़ी राहत और स्थायित्व महसूस करने लगे थे। परिणाम स्वरूप वे लोग अंग्रेजी सरकार से एक आने से लेकर बारह आने तक की जमींदारी भी

The euact order issued my government is given below:

1937 Jodhpur State Order in respect of renaming of Mali caste to 'Saini' or 'Sainik Kshatriya'—Source: Jodhpur State Archives—

देश में अंग्रेजी सरकार के आने के बाद से कृषक परिवारों की जिंदगी में कुछ परिवर्तन का दौर शुरू हुआ था, लेकिन यहां भी पूर्व के सभी दरबारी और रियासतदार बाधक बनकर खड़े हो गए, क्योंकि अब पूर्व के सभी दरवारी, जमींदार और रियासतदार लोग मुगलों को छोड़ कर अंग्रेजी सरकार की चमचागिरी में आ गए थे। दूसरी तरफ अंग्रेजों को भी किसानों से लगान वसूल करने हेतु एक माध्यम चाहिए था, अतः मुगलों के अधीन कार्यरत पुराने सभी जमींदारों और रियासतदारों को पुनः अपने अधीन नियुक्त कर लिया।

लेकिन अंग्रेज मुगलों से ज्यादा समझदार और व्यवस्थित रूप से शासन चलाने वाले लोग थे। इसलिए पहले के मुगल शासन में लगान वसूल करने की प्रक्रिया में परिवर्तन करते हुए नई व्यवस्था बनाई, जिसके अंतर्गत निचले स्तर का तहसीलदार या जमींदार यदि अपने कार्यो के प्रति ईमानदार नहीं होता था या उनकी लापरवाही दिखती या किसी भी प्रकार की लगान वसूली प्रक्रिया में कमी दिखती तो उनकी जमींदारी को बेचा या नीलाम किया जा सकता था और उस नीलामी प्रक्रिया में उस इलाके का कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता था। इसी वजह से बाद के समय में कुछ खेतिहर कृषक परिवार भी इस नई जमींदारी प्रक्रिया में भाग लेकर उस जमींदारी हिस्सा का कुछ भाग खरीद कर जमींदार बन जाता था।

दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार के ऊपर विश्वव्यापी संगठन होने के नाते अन्य देशों का भी दबाव हमेशा बना रहता था कि भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक कुरीतिओं को कम से कम किया जाए।

इन दो वजहों से अंग्रेजी शासनकाल में भारत में कुछ आमूलचूल परिवर्तन की शुरुआत देखने को मिलती है।

प्रथम तथ्य–कुछ किसान परिवार के लोग 1800 ईस्वी से 1900 ईस्वी के बीच में मेहनत और बचत करते हुए अंग्रेजी सरकार के अंदर एक आना से लेकर सोलह आना (उस जमाने की एक प्रकार की हिस्सेदारी मापने का तरीका) तक की जमींदारी खरीदी। इसके प्रमाण के रूप में देश के कुछ भागों में पुराने प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों को देख सकते हैं।

द्वितीय तथ्य–अंग्रेजी सरकार को समाचारपत्र के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के दबाव में आकर नहीं चाहते हुए भी अपने अधीनस्थ दरबारी और रियासतदारों के ऊपर कुछ बंदिशों को लगाना पड़ा था, जिसकी वजह से इन दरबारी और रियासतदारों ने अपने स्वामी अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज भी उठाई थी।

इन सब तथ्यों की चर्चा करना मैंने इसलिए आवश्यक समझा क्योंकि मुगल काल के पूर्व समय तक कृषि कर्मी के अंदर आज के जैसा सामाजिक विभाजन मौजूद नहीं था। परन्तु मुगल काल और उसके बाद में कृषक समाज पर सामंतवादी जमींदार और रियासतदारों के घोर अत्याचार की वजह से कृषकों को एक जगह से दूसरी जगह पर पलायन करना पड़ा, जिसका असर हर कृषक समूह पर पड़ा और अब कृषक जातीय समूह को नए जगहों पर उसके पुराने जगह में प्रचलित शब्दों से और जातिसूचक नामों के द्वारा सम्बोधित होना पड़ा और पीछे छोड़े हुए पुराने जातीय समूहों से कटते जाना इनकी नियति बन गई थी। जिसके परिणामस्वरूप कृषक समाज प्रत्येक नए जगह पर नए-नए नामों से सम्बोधित होता रहा और एक समय ऐसा भी आया जब इस कृषक समाज की गिनती सैकड़ों उपजातियों के रूप में होने लगी।

दूसरी ओर अंग्रेजी काल में सामाजिक संगठनों का समाज सुधार आंदोलन बढ़ता जा रहा था। इस वजह से अब कुछ कृषक समूह थोड़ी राहत और स्थायित्व महसूस करने लगे थे। परिणाम स्वरूप वे लोग अंग्रेजी सरकार से एक आने से लेकर बारह आने तक की जमींदारी भी

The euact order issued my government is given below:

1937 Jodhpur State Order in respect of renaming of Mali caste to 'Saini' or 'Sainik Kshatriya'—Source: Jodhpur State Archives—

देश में अंग्रेजी सरकार के आने के बाद से कृषक परिवारों की जिंदगी में कुछ परिवर्तन का दौर शुरू हुआ था, लेकिन यहां भी पूर्व के सभी दरबारी और रियासतदार बाधक बनकर खड़े हो गए, क्योंकि अब पूर्व के सभी दरवारी, जमींदार और रियासतदार लोग मुगलों को छोड़ कर अंग्रेजी सरकार की चमचागिरी में आ गए थे। दूसरी तरफ अंग्रेजों को भी किसानों से लगान वसूल करने हेतु एक माध्यम चाहिए था, अतः मुगलों के अधीन कार्यरत पुराने सभी जमींदारों और रियासतदारों को पुनः अपने अधीन नियुक्त कर लिया।

लेकिन अंग्रेज मुगलों से ज्यादा समझदार और व्यवस्थित रूप से शासन चलाने वाले लोग थे। इसलिए पहले के मुगल शासन में लगान वसूल करने की प्रक्रिया में परिवर्तन करते हुए नई व्यवस्था बनाई, जिसके अंतर्गत निचले स्तर का तहसीलदार या जमींदार यदि अपने कार्यो के प्रति ईमानदार नहीं होता था या उनकी लापरवाही दिखती या किसी भी प्रकार की लगान वसूली प्रक्रिया में कमी दिखती तो उनकी जमींदारी को बेचा या नीलाम किया जा सकता था और उस नीलामी प्रक्रिया में उस इलाके का कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता था। इसी वजह से बाद के समय में कुछ खेतिहर कृषक परिवार भी इस नई जमींदारी प्रक्रिया में भाग लेकर उस जमींदारी हिस्सा का कुछ भाग खरीद कर जमींदार बन जाता था।

दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार के ऊपर विश्वव्यापी संगठन होने के नाते अन्य देशों का भी दबाव हमेशा बना रहता था कि भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक कुरीतिओं को कम से कम किया जाए।

इन दो वजहों से अंग्रेजी शासनकाल में भारत में कुछ आमूलचूल परिवर्तन की शुरुआत देखने को मिलती है।

प्रथम तथ्य–कुछ किसान परिवार के लोग 1800 ईस्वी से 1900 ईस्वी के बीच में मेहनत और बचत करते हुए अंग्रेजी सरकार के अंदर एक आना से लेकर सोलह आना (उस जमाने की एक प्रकार की हिस्सेदारी मापने का तरीका) तक की जमींदारी खरीदी। इसके प्रमाण के रूप में देश के कुछ भागों में पुराने प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों को देख सकते हैं।

द्वितीय तथ्य–अंग्रेजी सरकार को समाचारपत्र के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के दबाव में आकर नहीं चाहते हुए भी अपने अधीनस्थ दरबारी और रियासतदारों के ऊपर कुछ बंदिशों को लगाना पड़ा था, जिसकी वजह से इन दरबारी और रियासतदारों ने अपने स्वामी अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज भी उठाई थी।

इन सब तथ्यों की चर्चा करना मैंने इसलिए आवश्यक समझा क्योंकि मुगल काल के पूर्व समय तक कृषि कर्मी के अंदर आज के जैसा सामाजिक विभाजन मौजूद नहीं था। परन्तु मुगल काल और उसके बाद में कृषक समाज पर सामंतवादी जमींदार और रियासतदारों के घोर अत्याचार की वजह से कृषकों को एक जगह से दूसरी जगह पर पलायन करना पड़ा, जिसका असर हर कृषक समूह पर पड़ा और अब कृषक जातीय समूह को नए जगहों पर उसके पुराने जगह में प्रचलित शब्दों से और जातिसूचक नामों के द्वारा सम्बोधित होना पड़ा और पीछे छोड़े हुए पुराने जातीय समूहों से कटते जाना इनकी नियति बन गई थी। जिसके परिणामस्वरूप कृषक समाज प्रत्येक नए जगह पर नए-नए नामों से सम्बोधित होता रहा और एक समय ऐसा भी आया जब इस कृषक समाज की गिनती सैकड़ों उपजातियों के रूप में होने लगी।

दूसरी ओर अंग्रेजी काल में सामाजिक संगठनों का समाज सुधार आंदोलन बढ़ता जा रहा था। इस वजह से अब कुछ कृषक समूह थोड़ी राहत और स्थायित्व महसूस करने लगे थे। परिणाम स्वरूप वे लोग अंग्रेजी सरकार से एक आने से लेकर बारह आने तक की जमींदारी भी

खरीद करने लगे थे। अब ये नए कृषक जमींदार परिवार पूर्व के अन्य जमींदारों की बराबरी में आने लगे, जिसकी वजह से इनके अंदर अकड़ और पकड़ ब्राह्मणी व्यवस्था की ओर ज्यादा दिखने लगी और अपने आपको काल्पनिक वैदिक साहित्य के द्वारा वर्ण-व्यवस्था में क्षत्रिय वर्ण या अन्य नामों से बराबरी करते हुए कृषक समाज के अंदर रहते हुए भी अपने लिए अलग से सम्बोधन और पहचान बनाकर रहने लगे, और बाद में एक नई उपजाति के रूप में उभरे। जैसे–सैंथवार (मल्ल), गंगवार, चंद्रौल, सच्चान, कटियार, अवधिया, घमैला, उसरेठे, गौड़, चंद्राकर, रेड्डी, पाटीदार, पाटिल, पवार, अंजना, कम्मा आदि। इस वजह से कृषक समाज के अंदर ब्राह्मणों और अंग्रेजों की 'फूट डालो–राज करो' की नीति ने बहुत बढ़ावा दिया।

इस नीति के तहत ब्राह्मणों और अंग्रेजों ने मिलीभगत से 1872 ईस्वी में "वर्ण" आधारित जनगणना करते हुए कृषक वर्ग की सभी उपजातियों को "सछूत शूद्र" में समाहित कर दिया। आगे ब्राह्मणों और अंग्रेजों ने पुनः 1931 ईस्वी में जाति आधारित जनगणना करवा कर कागजी तौर पर विभाजन को सत्यापित करने का काम भी किया। जिसमें ब्राह्मणों ने कृषक वर्ग को हर वर्णों में जगह देते हुए किसी राज्य में "स्वर्ण" बनाया, तो किसी राज्य में "पिछड़ा" बनाया, तो किसी राज्य में "अनुसूचित जाति" बनाया तो किसी राज्य में "अनुसूचित जनजाति" बनाया और आगे इन कृषक जातियों के समूह को करीब 1500 उपजातियों में विभक्त कर दिया। इस विभाजन का दुष्परिणाम आज बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, असम, पश्चिम बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल के कृषक वर्ग में देखने को मिलता है।

संक्षेप में कहा जाए तो भारत के अज्ञात काल से लेकर ज्ञात काल के समय का अध्ययन करने पर साफ दिखता है कि जाति उत्पत्ति से सम्बन्धित अज्ञात काल के समय का किसी भी प्रकार का अवशेष या प्रमाण नहीं मिलता है। जबकि ज्ञात काल का अवशेष और प्रमाण बहुत सारे मिलते हैं लेकिन उस काल में ब्राह्मणी व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था

और जाति उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रमाण निश्चित तौर पर 800 ईस्वी लगभग के समय तक में नहीं मिलते हैं। सिर्फ कहीं-कहीं शब्दों के प्रयोग मात्र से ही कुछ लोग उसे जाति सूचक मानकर देखते हैं, लेकिन उन्हीं कि बातों से आगे उसे नकारना भी पड़ता है।

भारतीय समाज में सीधा और सुस्पष्ट प्रमाण के तौर पर ब्राह्मणी व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था कि संरचना का प्रामाणिक और सत्यापित समय 800 ईस्वी के बाद से ही दिखाई देता है।

इसका प्रमाण और सुस्पष्ट प्रमाण भारत में उस समय के सभी सम्राटों की जाति में परिवर्तित होना और अपने आपको "राजपूत" के नाम से सम्बोधित करना है (यानी राजपूत काल),

दूसरा प्रमाण–भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणी व्यवस्था का बनना यानी प्रथम शंकराचार्य पीठ का स्थापित होना है,

तीसरा प्रमाण–भारत के सभी मंदिरों का निर्माण काल भी इसी समय का होना या इसके बाद का होना है,

चौथा प्रमाण–भारत के अंदर पूर्व कालीन व्यवस्था जो ज्ञान और कर्म विभाजन के आधार पर हर मनुष्य की योग्यता के अनुसार स्थानांतरित होता था, उसको अनुवांशिक तौर पर परिवर्तित करते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी लागू करना, जो आगे चलकर जाति के रूप में सम्बोधित हुआ!

पांचवां प्रमाण–सम्राट अशोक या अन्य किसी भी शासक के शिलापट्ट में जाति की अथवा वर्ण की जानकारी नहीं मिलना है।

छठा प्रमाण–सन् 800 ईस्वी से पूर्व में भारत में अनेक विदेशी शासक आए, लेकिन वे भारत की सभ्यता और संस्कृति को अपनाकर भारतीय हो गए यानी वे सभी भारत की जातिविहीन बौद्ध संस्कृति "बुद्ध" को मानते हुए बौद्धमय हो गए परन्तु 800 ईस्वी के बाद जितने भी विदेशी शासक आए वो ब्राह्मणी संस्कृति से हमेशा अलग रहे क्योंकि ब्राह्मणी संस्कृति में दूसरे को आत्मसात करने की क्षमता नहीं थी जो आज भी मौजूद है, जबकि बौद्ध संस्कृति में दूसरे को अपनाने की क्षमता थी।

ज्ञातव्य है कि भारत के अंदर ब्राह्मणी व्यवस्था के तहत अनेक ग्रंथों की रचना की गई। इसमें वर्ण और जाति जैसी व्यवस्था की चर्चा करने वाले सभी ग्रंथों की रचनावली लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है और इन ग्रंथों का सत्यापित समय 800 ईस्वी के बाद का है, क्योंकि इससे पूर्व भारत में कहीं भी नागरी लिपि और संस्कृत भाषा की पाण्डुलिपि नहीं मिली है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में रचित समस्त ग्रंथों का रचना काल 800 ईस्वी के बाद का है, जिनमें वर्ण और जाति के निर्धारण की चर्चा है। ज्ञातव्य है कि 800 ईस्वी के पूर्व में मिली प्रामाणिक लिपि ब्राह्मी थी और भाषा पालि और प्राकृत थी।

भारतीय इतिहास के प्राप्त अवशेषों और परम्पराओं को देखने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि 800 ईस्वी से पहले कि सभ्यता जाति रहित थी और कर्म प्रधान थी। इसके अतिरिक्त 800 ईस्वी से पूर्व जितने भी सम्राट हुए हैं सभी ने अपने आपको ब्राह्मणी वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था से बिल्कुल अलग रखा था, क्योंकि उनके प्राप्त सिक्कों और अभिलेखों में अन्य सभी तथ्यों की चर्चा है परन्तु जाति- वर्ण की चर्चा नहीं है। यदि जाति और वर्ण उस समय होते तो निश्चित रूप से उसकी चर्चा उनके अभिलेखों में मिलती। उन लोगों ने सिर्फ और सिर्फ अपने पूर्वजों के नाम या स्वयं के नाम पर वंश परम्परा बनाकर समाजिकता का निर्वहन किया और इसकी चर्चा अभिलेखों में भी की हैं। दूसरी ओर पूरे भारत में छोटे-छोटे कबीलों की आबादी थी, जो अपने जीवकोपार्जन हेतु मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन और विनिमय पर निर्भर थे।

यह व्यवस्था 800 ईस्वी के बाद से भारत के अंदर सुविधानुसार से हटकर वंशानुगत पेशे में बदल गया और एक "कृषक कर्मी" नाम से समाज या जाति-व्यवस्था का रूप लेने लगा। इस "कृषक कर्मी" समाज को गुजर-बसर करने वाली जाति के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। आगे चलकर इसी "कृषक कर्मी" शब्द का विशेषण या अपभ्रंश होते-होते कृषक कनबी, कृषक कुटुम्बी, कृषक कुनबी, कृषक कापू,

कृषक कुर्मी, कृषक कोयरी, कृषक कम्बा, कृषक गूजर जैसे अन्य नामों से सम्बोधित होने लगा। जो आज के समय में एक जातियों का समूह बनकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति के रूप में समाहित हो गया है।

इसी का दुष्परिणाम है कि आज भारत में "कृषि कर्मी" प्रजाति बहुसंख्यक होते हुए भी इकट्ठे नहीं हैं और विभिन्न नामों से विगत 100-150 सालों से अपने आपकी स्वतंत्र पहचान बनाए रखने में विश्वास करते हैं। जबकि आप इतिहास के काल-खण्ड में आज से 200 से 500 वर्ष पूर्व जाकर देखेंगे, तब ये बहुसंख्यक "कृषिकर्मी" एक ही नाम "खत्तिय" बाद में "खेतिहर" या "कृषक" (पालि और संस्कृत अनुसार परिवर्तित) से सम्बोधित होते थे। एक प्रकार से देखा जाए तो "कृषि कर्मी" समाज का मुख्य लक्ष्य था–धरती का सीना चीरकर सभी लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था करना। कितना ऊंच-विचार था कृषि कर्मी समाज का। लेकिन इसी अच्छी और मेहनतकश समाज की अच्छी और नेक सोच पर उस ठग और धूर्त ब्राह्मणी व्यवस्था की कु-दृष्टि पड़ गई।

इन सबका दुष्परिणाम यह हुआ कि इस समाज को जबरदस्ती ब्राह्मणों ने समाज का परित्यक्त अंग बना दिया और विषम ब्राह्मणी व्यवस्था को कृषक समाज के भोले-भाले गरीब लोग सामन्तों के डर से अंगीकार करते चले गए और आगे ये बातें इनकी रगों में बैठकर इतनी फैल गई है कि आज कृषक समाज ब्राह्मणी गुलामी की अंधभक्ति में लीन है और उस ब्राह्मणी व्यवस्था से निकलने को तैयार ही नहीं है!

दूसरी ओर कुछ जो नए कृषिकर्मी समाज में अपनी मेहनत से जमींदारी खरीद कर सम्पन्न हुए थे वे लोग उस ब्राह्मणी व्यवस्था की तहत अपने सगे भाई को छोड़ कर ब्राह्मणी व्यवस्था में क्षत्रिय बनने को आतुर हैं यानी एक ओर तो अपनी गरीबी, मजबूरी और अशिक्षा से दूसरे के द्वारा सताया गया सगा भाई है, जो आज भी मजबूरी में मानसिक गुलामी में जी रहा है, दूसरी ओर क्षत्रिय बनने को आतुर भाई

है जो जान-बूझकर उस गुलामी की मानसिकता से निकलना ही नहीं चाहते है। आज उनको ब्राह्मणों की गुलामी छोड़ स्वाभिमान के साथ जीने की जरूरत है।

आज के कुछ सम्पन्न कृषककर्मी अपनी पहचान को बदलकर उस ब्राह्मणी व्यवस्था में क्षत्रिय बनकर अपनी झूठी अकड़-पकड़ बनाने में व्यस्त हैं, ऐसे आदरणीय भाइयों से आग्रह है कि अपनी सच्चाई को जानिए और पूर्व में हुए अपने पूर्वजों पर हुए अत्याचार के लिए पारितोषिक समर्पण की भावना रखते हुए अपने गरीब भाइयों को ब्राह्मणों के छल-प्रपंच में फंसने से बचाएं और अपने अशिक्षित, गरीब, परित्यक्त भाई को सप्रेम गले लगाएं। हो सकता है कि एक दूसरे भाई के बीच बिगड़े सम्बन्धों की दूरियां पुरानी पड़ने की वजह से शुरुआत में कठिनाई भी आए, लेकिन किसी काम में लगातार प्रयास करते रहना ही सफलता का मूल मंत्र होता है।

क्या आज हम लोग पुनः उस ब्राह्मणी व्यवस्था की मानसिक गुलामी (क्षत्रिय और शूद्र) से निकलकर एक-दूसरे को एक नाम से ("कृषक" या "कृषि कर्मी") सम्बोधित नहीं कर सकते हैं?

"अत्त दीपो भव"

लेखकद्वय की अन्य रचनाएं
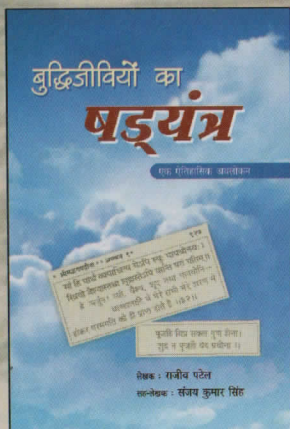
₹125
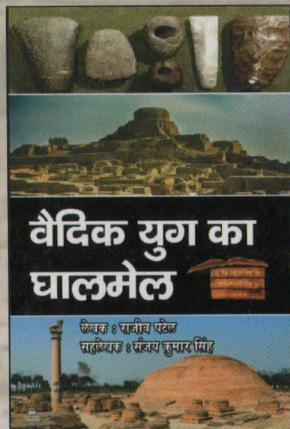
₹250
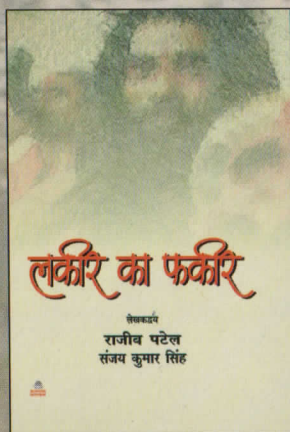
₹40
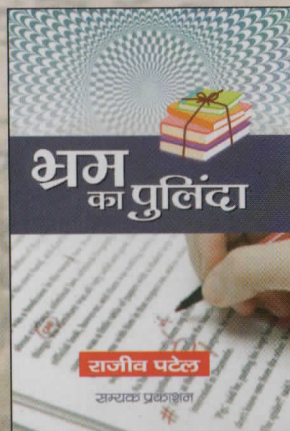
₹250

सम्यक प्रकाशन

32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली—110063

मो. : 9810249452, 9818390161

Email : hellosamyak1965@gmail.com Web : www.samyakprakashan.in

ISBN : 978-93-89849-51-6

9 789389 849516

₹ 40